□□□□□ □□□□

जनसत्ता 23 मई, 2014 : इन चुनाव परिणामों ने स्पष्ट कर दिया कि नरेंद्र मोदी अपने दल से ब□े हैं□ वे मालवा की इस कहावत के चरितार्थ हैं कि

'दस हाथ की ककं□ी में बीस हाथ का बीज'□ उनके ऐसा 'वैराट्य' ग्रहण करते ही उनका दल छिलके की तरह नीचे गिर गया है□ वे स्वयंसिद्ध सत्ता की उस धार में बदल चुके हैं, जिसे अब दल की पुरानी आडवाणी-अटल छाप म्यान में कतई नहीं रखा जा सकता□

आइ□, अब थो□ा विश्लेषण करें कि हकीकत में क्या यह संसदीय चुनाव, दल के दम पर ल□ी गई जनतांत्रिक ल□ाई था, या कि कोई और चीज! दरअसल, देखा जा□ तो यह ल□ाई 'माध्यम-साम्राज्यवाद' के सहारे कोई और ही लोग ल□ रहे थे□ वे ही उसके सारथी थे, लेकिन कृष्ण की तरह रथ के सामने नहीं, बल्कि पार्श्व में बैठे थे□ यह ल□ाई, वे लोग ल□ रहे थे, जो अमेरिका में कमींगाह में बैठ कर पिछले वर्षों से चिंतन करके लगातार बता रहे थे कि 'देअर इज अ ग्रोइंग क्राइसिस ऑफ गवर्नेबिलिटी इन इंडिया□' यह शासकीयता का संकट ही विकास को अवरुद्ध कर रहा है□ इसके लि□ वे भारत में चुनाव पद्धति को भी बार-बार प्रश्नांकित करते रहे थे कि यह □क अविकसित राष्ट्र की लद्ध□ जनतांत्रिकता है, इसमें इच्छित हमेशा स्थगित रहता है□ इसमें 'डिले इन □क्शन' है□ और इसको 'वासांसि जीर्णानि' की तर्ज पर उतार फेंकना चाहि□□ क्योंकि भारत, परिवर्तन के लि□ तरसता समाज है और उसे राजनीति के परंपरावादी लोग रोकने में लगे हैं□

दरअसल, इसमें निहित तर्कों के स्रोत बुनियादी रूप से फ्रांस के मिशेल क्रोजियर, अमेरिका के सेम्युअल हंटिंग्टन और जापान के जोजी वातानुकी के थे□ कीनेथ गालब्रेथ की 'कन्वर्जेन्स थिअरी' की तरह ही □क खतरनाक सैद्धांतिकी इन तीनों द्वारा प्रतिपादित की गई थी, जिसका मूलमंत्र यह था कि उदारवादी जनतंत्रों में 'विचारधारात्मक प्रतिपक्ष की भागीदारी के उन्मूलन' को ब□ा कर उसकी उपस्थिति को ही अगर शून्य तक ले जाया जा□ तो 'क्राइसिस ऑफ गवर्नेबिलिटी' का निवारण किया जा सकता है□ तब □क अनिवासी भारतीय बुद्धिजीवी अतुल कोठारी की कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क से, इन्हीं विचारों की वकालत करती हुई पुस्तक भी आई थी- 'डेमोक्रेसी ऐंड डिसकंटेंट', जो भारत पर □काग्र थी□

याद रखें, सेम्युअल हंटिंग्टन ही वह विचारक हैं, जिन्होंने 'सभ्यताओं के संघर्ष' की सैद्धांतिकी रखी थी, जिन्होंने 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की, संसार की दक्षिणपंथी ताकतों के लि□ जघन्यतम संघर्ष के समय की तरह व्याख्या□ं भी की थीं□ बहरहाल, जब लोकसभा चुनाव का पहला शंख फूंका गया तो नरेंद्र मोदी ने आह्वान किया था- कांग्रेस मुक्त भारत□ यह उसी चिंतक-त्रई की सैद्धांतिकी के सूत्र को पक□ लेना था, जिसमें उदार जनतंत्र में प्रतिरोध करने वाले विचारधारात्मक विपक्ष की राजनीतिक भागीदारी को शून्य करना था□ क्या कांग्रेस-मुक्त भारत का आह्वान □क विपक्षहीन भारतीय संसद के स्वप्न की शुरुआत नहीं कही जा सकती?

इस तरह के स्वप्न को किसी भी देश में साकार करने के लिए 'मीडिया-सामाज्यवाद' एक हथियार की तरह काम करता है। वह भारत में 'क्राइसिस ऑफ गवर्नेबलिटी' की बहस को विकराल बनाता हुआ संविधान में उलट-फेर करके चुनाव प्रणाली को ठीक उस तरह अपने वर्चस्व के भीतर लाना चाहता था, जैसा कि अमेरिका में अंतरराष्ट्रीय पूंजी की बंटी हुई ताकतें, अपना अंतिम अभीष्ट पूरा करती हैं। इन्हीं ताकतों ने कुछ समय पहले भारत में 'प्रेसीडेंशियल डेमोक्रेसी' की बहस भी चलाई थी, लेकिन उसके विरोध में चिंतनशील बिरादरी के देशव्यापी समूहों ने ऐसे पुरजोर तर्क रखे कि वह बहस देशव्यापी स्वीकृति नहीं ग्रहण कर पाई।

इन चुनावों ने उस असमय सिरा दी गई बहस को, चरितार्थ में बदल दिया। निश्चय ही दुनिया के सौ सर्वाधिक धनाढ्यों की कतार बनाने वाले भारतीय पूंजीवाद और अंतरराष्ट्रीय याराना पूंजी ने मिल कर, यह क्रियान्वित करके दिखा दिया कि देखो कि तुम्हारे इस देश के लद्धड़ जनतंत्र के शैथिल्य का निवारण अब होगा। हमने तुम्हारे यहां के चुनाव को राष्ट्रपति प्रणाली वाली तर्ज पर निपटा दिया है और वह पद्धति यहां काफी सफलता से लागू की जा सकती है, जो कामयाब भी होगी।

दरअसल, राष्ट्रपति प्रणाली में पार्टी से बड़ा व्यक्ति होता है। वे उसे रेस का घोड़ा बना कर उसी पर सारा दांव लगाते हैं। अमेरिका में सबसे बड़ा दांव हथियारों की लॉबी लगाती है और उसे जीतती भी रही है। वे मीडिया-मुगलों की मदद से राष्ट्रपति चुनाव को विचार के बजाय व्यक्ति से नाथ कर पूरी तरह व्यक्तित्व-केंद्रित बना देते हैं। फिर 'वामन' को 'विराट' बनाने के काम में उनके पास विज्ञापन कंपनियों के सर्वोत्कृष्ट दिमाग करिश्मा पर लगे होते हैं। वे 'फिक्शन' को 'फैक्ट' में बदलने की युक्तियों में सर्वाधिक दक्ष होते हैं। मसलन, 'स्टार वार' धारावाहिक मनोरंजन की मंशा से कतई नहीं बनाया गया था, बल्कि एक गुप्त मनोवैज्ञानिक रणनीति थी, जिसमें शीतयुद्ध को अवश्यंभावी बनाने और बताने के लिए विश्व के जनमानस में सफल घुसपैठ की गई थी।

इन लोकसभा चुनावों को व्यक्ति-केंद्रित बनाने की तैयारियां सुनियोजित ढंग से की गई थीं। मीडिया इसमें उस हथियार की तरह था, जिसके ट्रिगर पर बहुराष्ट्रीय पूंजी की अंगुली नहीं थी, बल्कि वह तो पूरा का पूरा उनकी मुट्ठी में कर लिया गया था। मतदान की तिथियों के निकट आते-आते तो स्थिति यह हो चुकी थी कि मतदाता टीवी का रिमोट या इंटरनेट का कर्सर क्लिक करता और पाता कि वहां 'अच्छे दिन आने वाले हैं' की खबर होती थी। और वह खबर किसी राजनीतिक बुद्धि की लिखी हुई नहीं थी, जिसमें आदर्शों, सिद्धांतों और विचारधाराओं के दावे होते हैं, बल्कि वह अंतरराष्ट्रीय स्तर की विज्ञापन कंपनी की 'क्लिकी' थी, जिसके कथ्य और प्रस्तुति में वही चतुराई थी, जिसके चलते उन्होंने पिछले दशकों में अल्प-उपभोगवादी रहे और भारतीय युवा को वस्तुओं का इतना दीवाना बना दिया कि उस वस्तु को हासिल करने के लिए वे जान झोंक देने के लिए तैयार होने लगे।

बहरहाल, बताया जाता है कि इस चुनाव प्रचार में भारतीय जनता पार्टी ने अमेरिका की 'मेडिसिन डू जेंसी' को अनुबंधित किया और जिसने आक्रामक मार्केटिंग के सहारे खासकर उस युवा को ललकारा, जो उपभोग के लिए दीवाना हो चुका था। इन कंपनियों ने चुनाव पूर्व साल भर में भारतीय टीवी चैनलों के 'फिक्स पाइंट' का अध्ययन किया, जिसमें कार्यक्रम का समय, उसकी प्रकृति, दर्शक-समुदाय, उसकी उम्र और वर्ग या जाति तक की पड़ताल करके श्रोता या दर्शक अनुसंधान का काम निपटाया गया और उसके अनुकूल विज्ञापन तैयार किए गए। अनिवासी भारतीयों के सर्वाधिक सक्रिय संबंध दल में मोदी से ही थे। इसलिए प्रचार में पूंजी का संकट नहीं था।

बहरहाल, भारतीय जनता पार्टी के बूढ़े नेताओं को हाशिये पर छोड़ कर विज्ञापन कंपनियों ने अंतरराष्ट्रीय याराना पूंजी के सहारे, नवपूंजीवाद की गाड़ी को भारत में घेरने के लिए, नरेंद्र मोदी का सुविचारित चुनाव किया।

कुल मिला कर उन्होंने उन्हें मुक्तिदाता के रूप में स्थापित कर दिया। भारतीय जनता तो पैंसठ सालों के बाद भी भीतर शताब्दियों से भरे प्रजाबोध से बाहर

नहीं आ पाई है। वह हमेशा यही चाहती है कि कोई □ कहो, जिसके भरोसे वह सब कुछ छो□ कर पांच साल के ला□ निर्विघ्न नींद निकाल ले□ तो मोदी की ललकार के पूंजी के खिला□ियों ने पूरे देश में गुंजा दिया□

अब प्रश्न है कि नरेंद्र मोदी ने ऐसा कौन-सा अभूतपूर्व मॉडल देश के सामने रखा कि पूरा देश उन्मादी की तरह उनके पीछे हो लिया□ मसलन, नेहरू जब प्रधानमंत्री बने थे तो उनके पास महालनोबिस-मॉडल था, जहां 'निजी क्षेत्र' और 'जन-क्षेत्र' की स्पष्ट लक्ष्मण रेखा□ खींची गई थीं और वे देश के समक्ष अपने 'सपनों के भारत' की तस्वीर रख रहे थे□ उन्होंने संविधान के प्रति अपनी आस्था को जीवित रख कर, उसके 'जनकल्याणकारी' स्वरूप की प्रतिज्ञा को विस्मृत नहीं किया था□ मोदी के विज्ञापनों की प□ताल करें तो पाते हैं कि वहां कोई सुनियोजित 'आर्थिक' अनुपस्थिति है□ बल्कि ग्रे-बेकर के शब्दों में कहें तो यह भारत की 'जॉयस-जनरेशन' के ला□ तैयार किया गया, 'हैपी इकोनोमिक्स' है, जिसमें विज्ञापनी भाषा के बलबूते दिया गया □ कअमूर्त आशावाद भर है, जिसको दीवानगी की हद तक ऊंचा उठा दिया गया□

वहां अधिकतम लोगों के अधिकतम हित की कोई सौगंध नहीं है, सिर्फ मध्यवर्ग की तुष्टि की तरकीबें हैं कि अच्छे दिन आने वाले हैं□ कुल मिलाकर उस तुष्टिदान का मुहाना ट्रिकल-डाउन थिअरी में ही खुलता है□ यह वही ट्रिकल-ड्राउन थियरी है, जिसके चलते सोलह प्रतिशत अत्यंत धनाढ्य लोगों की उपभोक्ता संपन्नता की जूठन पर शेष भारत के 'अच्छे दिन आ□ंगे□ उनके पास बेशक शिक्षा प्रारूप भी वही लागू होने वाला है, जिसे अटल बिहारी वाजपेयी-युग में अंबानी-बि□ला की गठित शिक्षा समिति द्वारा तैयार कराया गया था□ आने वाले 'अच्छे दिनों' में उच्च शिक्षा की बहुराष्ट्रीय कंपनियां यानी ऑक्सफर्ड और हार्वर्ड आदि विश्वविद्यालय जल्दी भारत में प्रवेश करेंगे, क्योंकि 'अबकी बार मोदी सरकार' में कांग्रेसी काल की हिचक और अनिर्णय नहीं होगा□ दृ□ नेतृत्व का अर्थ है प्रतिरोध को निर्दयता के साथ ढहा कर अपने अभीष्ट को प्राप्त करना□

अच्छे दिन लाने के ला□ नरेंद्र मोदी चुनावी सभाओं में देश से केवल साठ महीने मांग रहे थे, लेकिन जीतने के बाद वे दस साल की मांग कर रहे हैं□ मगर हकीकत यह है कि दस साल पूरे होने के पहले ही देश की राजनीति आने वाले सौ साल के ला□ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जबड़े में चली जा□गी□ धनपतियों ने मोदी के ला□ चला□ ग□ अभियान में पैसे दस-बीस हजार करो□ कमाने के ला□ थो□ लगा□ ग□ हैं, यह राशि तो केवल देश के □ कसदी के ला□ करो□ पर उठाने के वास्ते खर्च की गई पगड़ी की रकम है□ इसमें कई पोट-भाडैती भी शामिल हैं, जिनका पता इस मुल्क के नागरिकों को बाद में चलेगा□ जब बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश पर शासन करेंगी, तब बहुत तीखा उजाला होगा, लेकिन उस उजाले के पीछे शताब्दी भर अंधेरा होगा, जिसमें मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की तरह जुलूस में चलते हु□ सब चुप होंगे□

नरेंद्र मोदी निश्चय ही सच्चे और ईमानदार राष्ट्रवादी नेता हैं□ लेकिन उनकी हैसियत पिछली सत्ता में बैठे लोगों की तरह ही है, जो ईमानदार थे, लेकिन वे खिलौने शिकागो-स्कूल, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के थे□

नरेंद्र मोदी अंतरराष्ट्रीय पूंजी और भारतीय पूंजीपतियों- जिनकी संख्या अब भूमंडलीकरण की नीतियों ने सौ से भी बढ़ा कर दी है- का चमकदार मोहरा हैं□ उसकी चमक और चकाचौंध में विचारहीन विचार की बंधक पीढ़ी □ कचुने हु□ अंधत्व की ओर कूच कर गई है□ बहरहाल, हम अभी अच्छे दिनों के आगमन के हो-हल्ले में ठीक से उस समय की कल्पना नहीं कर पा रहे हैं, कि अर्थशास्त्र के आनंदवाद से नाथ कर इस देश और समाज को किस तरह अनाथ कर दिया जा□गा, यह सोच पाना ही मुश्किल है□ अब राजनीति पतविर्तन के पुनराभ्यास पर है□

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta